International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 29-11-2019; Accepted: 30-11-2019
www.hindijournal.com
Volume 6; Issue 1; January 2020; Page No. 31-33

आधुनिक हिन्दी गजल में शमशेर और त्रिलोचन की गजलें

डॉ. शहजाद आलम
Award Ph.d (Hindi) from JNU Delhi, New Delhi, India

प्रस्तावना

हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं को जोड़ने की एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में हम ग़ज़ल विधा को देख सकते हैं। 'ग़ज़ल' अरबी फारसी से होती हुई उर्दू में आई और इसने उर्दू में आकर लोकप्रियता की बुलंदियों के शिखर को छुआ। इसी लोकप्रियता के प्रभावस्वरूप, आधुनिक हिंदी साहित्य के निर्माता भारतेंदु ने हिंदी में ग़ज़ल विधा का प्रारंभ किया। भारतेंदु कविता के क्षेत्र में खड़ी बोली को उस रूप में स्थापित करने में सफल न हो पाए हों परंतु ग़ज़ल लेखन के क्षेत्र में उन्होंने खड़ी बोली का सफल प्रयोग किया।

उर्दू में ग़ज़ल की लोकप्रियता से प्रभावित होकर और पद्य में खड़ी बोली के प्रयोग स्वरूप, भारतेंदु ने हिंदी भाषा में ग़ज़लें लिखीं। साथ ही यह हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं को करीब लाने का एक माध्यम भी थी। भारतेंदु और उनके मंडल के साहित्यकारों ने अपने को इस संकीर्णता से बचाया कि वे उर्दू–फारसी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग न करें तथा इन भाषाओं के बीच दूरी बरकरार रखें। अपितु इन्होंने ऐसी साहित्यिक भाषा का प्रचार–प्रसार किया जो आम जन की दैनिक बोलचाल की भाषा थी।

दिल मेरा ले गया दगा करके।
बेवफ़ा हो गया वफ़ा करके।
हिज्र की शब घटा दी हमने।
दास्तां जुल्फ़ की बढ़ा करके।
वक़्ते रहलत जो आए बालीं पर।
ख़ूब रोए गले लगा करके।
दोस्तों, कौन मेरी तुरबत पर।
रो रहा है रसा–रसा करके।[1]

भारतेंदु ने ग़ज़ल विधा को हिंदी में लाकर दोनों भाषाओं को अलगाने वाले संकीर्ण विचारों पर चोट कर इन्हें नज़दीक लाने का प्रयास किया। भारतेंदु ने उर्दू, फारसी की चली आ रही ग़ज़ल परंपरा के अनुसार ही ग़ज़लें लिखीं। उनकी ग़ज़लों पर उर्दू की परंपरागत ग़ज़लों का ही प्रभाव दिखता है। परंतु इन्होंने कुछ ग़ज़लें हिंदी भाषा के अनुरूप उसकी अपनी ज़मीन पर खड़े होकर लिखीं, जिनमें भाषागत रूप से लेकर शिल्पगत रूप तक हिंदी की अपनी छटा दिखाई पड़ती है। इन ग़ज़लों को हम हिंदी ग़ज़ल के आधार के रूप में देख सकते हैं।

भारतेंदु के ग़ज़ल विधा को अपनाने तथा उसे हिंदी में लाने के प्रयासस्वरूप हम देखते हैं कि न केवल उनके समकालीन कवियों का रुझान इस विधा की ओर बनता है बल्कि उनके बाद हम ग़ज़ल लेखन की एक सुदीर्घ परंपरा भी पनपते हुए देखते हैं। द्विवेदी युग में श्रीधर पाठक, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', छायावादी युग में जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और बाद में शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन, दुष्यंत कुमार आदि से लेकर आज के हिंदी ग़ज़लकारों तक हिंदी ग़ज़ल लेखन का एक विकास क्रम दिखाई देता है।

भारतेंदु से लेकर दुष्यंत कुमार से पहले हिंदी के कवियों द्वारा जो ग़ज़लें लिखी गईं उनमें से अधिकतर उर्दू–फारसी की परंपरा के अनुसार ही लिखी गईं। हालांकि कुछ ग़ज़लकारों ने प्रयोगस्वरूप अलग तरह की ग़ज़लें भी लिखीं, जिनमें प्रसाद की संस्कृतनिष्ठ शैली की ग़ज़लें तथा त्रिलोचन की हिंदी की ज़मीन से जुड़ी ग़ज़लें उल्लेखनीय हैं।

दुष्यंत से पहले ग़ज़ल विधा हिंदी में उस रूप में ख्याति हासिल नहीं कर पाई जिस रूप में दुष्यंत के आगमन के पश्चात हिंदी ग़ज़ल ने प्राप्त की। दरअसल दुष्यंत से पूर्व हिंदी कवियों ने केवल इस विधा में अपना कौशल दिखाने के लिए ही ग़ज़ल लेखन किया। उनका ग़ज़ल लेखन से उस रूप में कोई बुनियादी सरोकार नहीं रहा। उन्होंने इस विधा को अपनी मुख्य विधा के रूप में नहीं अपनाया। वे मुख्य रूप से कवि के रूप में ही जाने जाते रहे। परंतु दुष्यंत ने ग़ज़ल विधा को अपने बुनियादी या मूल लेखन की विधा के रूप में अपनाया, जिसके कारण वह कवि से अधिक ग़ज़लकार के व्यक्तित्व को जीते हैं। इसलिए वह ग़ज़लविधा को उस मुक़ाम तक पहुँचाने में सफल हुए जहाँ तक अन्य कवि उसे नहीं ले जा पाए। उदाहरण देखिए :

कहां तो तय था चिरागां हरेक घर के लिए।
कहां चिराग़ मयस्सर नहीं शहर के लिए।
यहां दरख़्तों के साए में धूप लगती है।
चलो यहां से चलें और उम्र भर के लिए।[2]

दुष्यंत कुमार हिंदी ग़ज़ल लेखन के परंपरा पुरुष के रूप में उभर कर सामने आते हैं। उन्होंने हिंदी ग़ज़ल को उर्दू–फारसी की चली आ रही परंपरागत परिपाटी से मुक्त कराकर सामाजिक, राजनीतिक यथार्थ से जुड़े मुद्दों तथा आधुनिक चेतना के संदर्भों से जोड़ा। उन्होंने हिंदी ग़ज़ल लेखन के लिए आमफ़हम की भाषा का प्रयोग कर ग़ज़ल को हिंदी भाषा में भी लोकप्रियता की बुलंदियों पर पहुँचा दिया, जिसके चलते हिंदी में ग़ज़ल लेखन एक गंभीर कार्य के रूप में अपनी जगह बना पाया तथा हिंदी के कवि इस विधा को साधने को अग्रसर हुए।

इस आधुनिक हिंदी ग़ज़ल के लिए अनुकूल ऊपजाऊ भूमि तैयार करने में शमशेर बहादुर सिंह और त्रिलोचन शास्त्री का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इनसे प्रभावित होकर अनेक कवियों ने हिंदी ग़ज़लें लिखीं। दुष्यंत स्वयं अपने को शमशेर की ग़ज़लों से प्रभावित मानते हैं। वह स्वीकारते हैं कि उन पर शमशेर की ग़ज़लों का प्रभाव पड़ा।

शमशेर और त्रिलोचन दोनों समकालीन कवि हैं। दोनों ने ही हिंदी में ग़ज़लें लिखीं परंतु दोनों ही कवियों की संवदेना का धरातल एकदम अलग–अलग है। शमशेर ने उर्दू–फारसी की परंपरागत ग़ज़लों से ही अपनी संवदेना ग्रहण की है। उनकी ग़ज़लों में परंपरागत उर्दू शायरी की भांति आशिक–माशूक के प्रेम प्रधान विषय हैं। उनकी ग़ज़लों में वही शोखी, नज़ाकत, नफ़ासत

और ग़ज़ल का वही लहज़ा दिखाई देता है जो उर्दू की परंपरागत ग़ज़लों का है। शमशेर का लहज़ा वैसा ही दिखाई देता है, जो उर्दू की परंपरागत ग़ज़लों का है। शमशेर की ग़ज़लों में रूमानियत है, इस रूमानियत की विभिन्न भंगिमाएं हैं, जो उर्दू की क्लासिक ग़ज़ल से ली गई हैं। उनकी ग़ज़लें पारंपरिक ग़ज़लों का सांचा लिए हुए हैं।

ये शोख़ चाल तेरी काफ़िराना मस्ताना।
किसी का ख़ाबो–ख़याले–शबाना मस्ताना।
जो ख़ुद ही बहका हुआ हो, तो उस पे क्यों डाले।
भला कोई निगाहे–आशिक़ाना मस्ताना।[3]

शमशेर की ग़ज़लों में हमें उर्दू के शायर मीर, सौदा और ग़ालिब आदि का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। वह ग़ालिब से तो इतना प्रभावित हैं कि वह स्वयं इसे स्वीकारते हैं कि ग़ालिब उनकी ग़ज़लों में कभी भी चले आते हैं। उनकी ग़ज़लों में अधिकतर प्रेमपरक ग़ज़लें ही हैं। उनका मूल स्वर रूमानी ही रहा है। उनकी ग़ज़लें उर्दू की प्रकृति की ग़ज़लें हैं, अगर उनकी लिपि बदल दी जाए तो वे उर्दू की ग़ज़लें ही कही जाएंगी।

इसके विपरीत त्रिलोचन ने जो ग़ज़लें लिखी हैं, वह हिंदी की प्रकृति की ग़ज़लें हैं। उनकी ग़ज़लों की संवेदना का धरातल उर्दू–फारसी की ग़ज़लों का नहीं हैं अपितु यह हिंदी में ग़ज़ल की नई भूमि तलाशने का प्रयास है। ये ग़ज़लें हिंदी की जातीय परंपरा की ग़ज़लें हैं। त्रिलोचन ग़ज़लों के लिए एक नई भावभूमि तलाश कर उसे तैयार करने का कार्य करते हैं। उनकी ग़ज़लों में दुख, अवसाद और अभाव का स्वर ज़्यादा मुखर है। उनकी ग़ज़लों में सामाजिक विसंगतियों और उसे यथार्थ की विभिन्न भंगिमाएँ देखने को मिलती हैं। उनकी ग़ज़लों में प्रेम का भाव शमशेर से अलग है। उनकी ग़ज़लों में प्रेम में न्योछावर या मिट जाने का भाव ज़्यादा है। उनमें उर्दू ग़ज़ल की जो शोखी एवं नज़ाकत है, वह दिखाई नहीं पड़ती। त्रिलोचन का जो रंग है वह एकदम निराला है। वह निराला है, इसलिए प्रचलित भी नहीं है। वह हिंदी ग़ज़ल का सांचा तैयार करते हैं।

बिस्तरा है न चारपाई है।
ज़िंदगी ख़ूब हम ने पाई है।
कल अँधेरे में जिसने सर काटा।
नाम मत लो हमारा भाई है।
आदमी जी रहा है मरने को।
सब के ऊपर यही सच्चाई है।[4]

त्रिलोचन के यहाँ सामाजिक यथार्थ से जुड़े विषय अधिक देखने को मिलते हैं। इन्होंने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से सामाजिक विसंगतियों पर प्रहार किया है। इन ग़ज़लों में अभाव से उत्पन्न पीड़ा है, राजनीतिक और सामाजिक स्थितियों पर व्यंग्य है। यह ग़ज़लें उर्दू की परंपरागत ग़ज़लों की भांति नज़ाकत, नफ़ासत एवं शोखी से भरी हुई नहीं हैं, इनमें तो समाज की तल्ख़ सच्चाइयाँ व्यक्त हुई हैं।

ऐसा नहीं है कि शमशेर के यहाँ केवल प्रेम एवं रूमानियत है और त्रिलोचन के यहाँ केवल सामाजिक यथार्थ ही है। शमशेर ने प्रेम के अलावा सामाजिक यथार्थ, राजनीतिक विसंगति आदि विषयों पर ग़ज़लें लिखने के साथ–साथ प्रकृति विषयक ग़ज़लें भी लिखी हैं। शमशेर की ग़ज़लों में हमें विभिन्न प्रकार की भावभूमि दिखाई पड़ती है। उसमें कभी उनकी ग़ज़लों में एक प्रकार की तलाश दिखाई पड़ती है, तो कभी स्वयं से आत्मालाप करते दिखाई देते हैं। कहीं वह मृत्यु का प्रेमिका के रूप में इंतज़ार करते प्रतीत होते हैं, तो कहीं वह प्रकृति से बतियाते दिखते हैं। इस तरह उनकी ग़ज़लों में हमें कई रंग देखने को मिलते हैं। हालाँकि उन सब में उनका रूमानी रंग सबसे ज़्यादा प्रखर है।

इस प्रकार त्रिलोचन के यहाँ भी हमें कई तरह के रंग दिखाई पड़ते हैं। उनकी ग़ज़लों में भी प्रेम व रूमानियत दिखाई देती है, परंतु वे उसमें भी यथार्थ के धरातल को नहीं छोड़ते। उनकी ग़ज़लों में प्रकृति गांव से जुड़कर, किसानी जीवन से जुड़कर जीवंत हुई है और कई रंगों में सामने आई है। उन्होंने प्रकृति का सूक्ष्म वर्णन किया है, बसंत ऋतु का तो विशेषकर बहुत ही सुंदर ढंग से उनकी ग़ज़लों में आगमन हुआ है। त्रिलोचन की ग़ज़लों में भी आत्मालाप दिखाई देता है, वह आत्मालाप दुख और अवसाद की स्थिति से उपजा है। उनके यहाँ मृत्यु का भय दिखाई नहीं देता। वहाँ सिर्फ़ जीवन ही जीवन और उसकी सच्चाइयाँ, उसके संघर्ष दिखाई देते हैं। उनकी ग़ज़लों की भावभूमि भी विविध रंग लिए हुए है, परंतु वहाँ ताप के ताए हुए दिन ही अधिक मिलते हैं।

शिल्प की दृष्टि से भी शमशेर और त्रिलोचन की ग़ज़लें भिन्न प्रकृति की हैं। हालाँकि शमशेर और त्रिलोचन दोनों ने ही ग़ज़ल विधा के शिल्प उसके तत्वों और उसके अनुशासन का पालन किया है। शमशेर के यहाँ उर्दू के परंपरागत शिल्प विधान की ही झलक दिखाई देती है, उन्होंने उसमें कहीं परिवर्तन करने या उसे भंग करने का प्रयास नहीं किया है। जबकि त्रिलोचन के यहाँ शिल्पगत प्रयोग दिखाई देते हैं, जिसके कारण उनकी ग़ज़लों में वह सौंदर्य दिखाई नहीं देता जो शमशेर के यहाँ देखने को मिलता है। उनकी ग़ज़लों में बहर दोष भी अधिक देखने को मिलता है, जिससे लय बार–बार टूटती है, ग़ज़ल का नाद सौंदर्य भंग होता है। शमशेर के यहाँ भी बहर दोष पाया जाता है, परंतु यह काफ़ी कम ही दिखता है और ग़ज़ल के सौंदर्य को भी भंग नहीं करता।

शमशेर ने अपनी ग़ज़लों में उर्दू–फारसी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है, कहीं–कहीं यदि कठिन शब्दों का प्रयोग भी किया है तो वे ग़ज़ल के सौंदर्य, उसकी रवानी को भंग नहीं करते, बल्कि और भी बढ़ा देते हैं। उनमें क्लासिक उर्दू ग़ज़लों की भांति भाषा की लोच, नफ़ासत आदि बरकरार दिखती है। उन्होंने उर्दू के मुहावरों का प्रयोग कर भाषा में और भी कसाव पैदा किया है, जिससे उनकी ग़ज़लों का सौंदर्य और भी बढ़ गया है।

जबकि त्रिलोचन की ग़ज़लों में ठेठ हिंदी भाषा का प्रयोग हुआ है। उन्होंने हिंदी के ठेठ मुहावरों का भी प्रयोग किया है। उनकी ग़ज़लों में संस्कृत के बहुत से कठिन शब्द देखने को मिलते हैं, जो ग़ज़ल जैसी नाजुक सिन्फ के लिए अनुकूल नहीं है। इससे उसकी भाषा की लोच समाप्त हो जाती है। इससे ग़ज़लों का सौंदर्य भी भंग हुआ है।

शमशेर की तुलना में त्रिलोचन की ग़ज़लों में शिल्पगत दोष अधिक पाए जाते हैं, परंतु त्रिलोचन ग़ज़ल को हिंदी के सांचे में ढालने का कार्य कर रहे थे, इसलिए यह शिल्पगत दोष आना स्वाभाविक ही है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शमशेर और त्रिलोचन की ग़ज़लों में कई भिन्नताएं और कई स्तर पर समानताएं मौजूद हैं। शमशेर हिंदी और उर्दू भाषा के मेल–जोल को आगे बढ़ाने का कार्य कर रहे थे। वे दोनों भाषाओं की मेल–जोल की संस्कृति के प्रतीक हैं। वह स्वयं कहते हैं:

मैं उर्दू और हिंदी का दोआब हूँ
मैं वह आईना हूँ जिसमें आप हैं[5]

इस तरह शमशेर की ग़ज़लें हिंदी और उर्दू के दोआब की ग़ज़लें हैं, जबकि त्रिलोचन की ग़ज़लें हिंदी की जातीय परंपरा की तलाश की ग़ज़लें हैं। त्रिलोचन की ग़ज़लें भारतीय जनमानस के सांस्कृतिक और भाषागत संस्कार को पहचानने की ग़ज़लें हैं।

उनकी ग़ज़लें हिंदी के सांचे में ढली हुई हिंदी की अपनी ज़मीन की तलाश की ग़ज़लें हैं। अपनी ग़ज़लों के विषय में वह कहते हैं, ''जो काम मैं कर रहा हूँ वह औरों के ध्यान में नहीं है।...मैं ग़ज़ल को भारतीय स्वभाव देना चाहता हूँ।...उर्दू के टेस्ट से देखने वाले मुझे नाकामयाब कहेंगे, मैं नहीं।''[6]

त्रिलोचन की ग़ज़लें हिंदी के स्वभाव की ग़ज़लें हैं। यह ग़ज़लें हिंदी की ग़ज़लों के लिए आधार तैयार करने के लिए लिखी गई हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि दोनों की ग़ज़लें भिन्न प्रकृति की हैं और दोनों ग़ज़लकारों का उद्देश्य भी ग़ज़ल लेखन के प्रति अलग–अलग रहा है। इसलिए दोनों की ग़ज़लें भी अलग–अलग स्वभाव लिए हुए हैं। इन दोनों ग़ज़लकारों के बाद आगे विकसित हुई हिंदी ग़ज़ल को देखते हुए हम कह सकते हैं कि उसने अपने इन ग़ज़लकारों से काफ़ी कुछ हासिल किया है और उनको अपने–अपने मकसदों में कामयाब भी बनाया है।

संदर्भ सूची

1. ओमप्रकाश सिंह (सं.), भारतेंदु हरिश्चंद्र ग्रंथावली–3, पृ. 104–105
2. दुष्यंत कुमार, साये में धूप, पृ. 13
3. रंजना अरगड़े (सं.), शमशेर बहादुर सिंह, सुकून की तलाष, पृ. 43
4. त्रिलोचन, गुलाब और बुलबुल, पृ. 28–29
5. रेवती रमण, 'आदमी की अमरता कवि है', आलोचना, अंक–40, जनवरी–मार्च, 2011
6. दिविक रमेश, नए कवियों के काव्य–शिल्प–सिद्धांत, पृ. 376